विपश्यना

साधकों का
मासिक प्रेरणा पत्र

बुद्धवर्ष २५३० | चैत्र पूर्णिमा | १४ अप्रेल १९८७ | वर्ष १६ | अंक १०

धम्म वाणी

यथा दण्डेन गोपालो, गावो पाजेति गोचरं ।
एवं जरा च मच्चु च, आयुं पाजेन्ति पाणिनं ॥

धम्मपद– १०/७

जैसे ग्वाला लाठी से गायों को चरागाह में ले जाता है, वैसे ही बुढ़ापा और मृत्यु प्राणियों की आयु को ले जाते हैं ।

मिल गया सही मार्ग

डॉ. रामनयन सिंह

बचपन से ही धार्मिक प्रवृत्ति की ओर मेरा झुकाव रहा है । मूर्ति-पूजा से यात्रा आरंभ हुई । चौदह - पन्द्रह वर्ष की अवस्था से रामायण और गीता का पठन - पाठन करने लगा । विज्ञान का विद्यार्थी था । इस मूर्ति - पूजा और इन सद्ग्रन्थों के अध्ययन ने विश्वास जमाया नहीं, डिगाया ही । विज्ञान से स्नातक डिग्री उपलब्ध हो जाने के बाद परिस्थितिवश संस्थागत अध्ययन छोड़ कर आजीविका हेतु अध्यापन कार्य में संलग्न होना पड़ा । मन को समझने की जिज्ञासा ने मुझे मनोविज्ञान की ओर मोड़ा । मनोविज्ञान से एम. ए. करने के बाद पी-एच. डी. की डिग्री हासिल की । यह सब अध्यापन करते हुए किया । सन् १९६० से ही स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर (उ. प्र.) में मनोविज्ञान के अध्यापन कार्य में लगा हूँ । इस समय स्नातकोत्तर कक्षाओं के अध्यापन, कुछ शोध कार्य और लेखन में संलग्न रहते हुए मन को समझने की पूरी लगन के साथ प्रयास चल रहा है । मानसिक स्वास्थ्य के क्षेत्र में विशेष रुचि बन गई है । लेकिन जो कुछ पढ़ा (और यथासंभव खूब पढ़ा, लगन के साथ) उससे खोजी मन को तृप्ति नहीं मिली । वर्तमान मनोविज्ञान ' मेकेनिकल ', सतह-स्पर्शी और परस्पर-विरोधी सिद्धान्तों से भरपूर लगा । " डेप्थ " मनोविज्ञान में भी संतोषजनक गहराई का बोध न हो सका । पिटी-पिटाई धर्म और दर्शन की पुस्तकें आकर्षित तो करती हैं, लेकिन पढ़ने पर अन्त में अतृप्ति और ऊब ही मिलती है । इस बीच कई धर्मगुरुओं के सम्पर्क में भी गया । उनके बताये मार्ग पर पूरी निष्ठा के साथ चला भी । उससे भी अतृप्ति में परिवर्तन नहीं हो पाया । वैज्ञानिक मानसिकता के कारण कुछ जम नहीं पाया । कुछ ध्यान का अभ्यास भी चलता रहा । लेकिन अस्तित्व की गहराई से प्यास गई नहीं ।

कोई दस वर्ष पूर्व विपश्यना साधना पद्धति की भनक मिली । पूज्य ऊ बा खिन के प्रवचनों की एक लघु पुस्तिका पढ़ने को मिली । मन आकर्षित हुआ, सूचनाएँ भी मिलीं लेकिन संयोग बना नहीं । स्वामी विज्ञान भिक्षु से विपश्यना साधना पद्धति का पूरा परिचय मिला और उसमें सम्मिलित होने की सत्प्रेरणा मिलने लगी । उन्हीं के प्रयास से साधना में प्रवेश का प्रथम अवसर मिला । राजगृह में १९८५ के एक से दस सितम्बर तक चले विपश्यना साधना शिविर में सम्मिलित हुआ । सहायक आचार्य पूज्य लक्ष्मीनारायणजी राठी शिविर के संचालक थे । आचार्य श्री सत्यनारायणजी गोयन्का के टेपित प्रवचनों ने मुझे झकझोर दिया । तृप्ति मिली । लघु क्रांति घटी । अब तो बात मन में बैठ गई है कि खोजने की दौड़ व्यर्थ है । खोजने की दौड़ नहीं लगानी है, द्वार-द्वार भटकना नहीं है । अपने ही भीतर खोदना है । विपश्यना की कुदाल मिल गई है खोदने के लिए ।

अंध श्रद्धा के लिए मेरा मन कभी तैयार नहीं हो पाया । प्रचलित आध्यात्मिक पाखंड के प्रत्यक्ष अनुभव से पोषित संदेहभाव लेकर ही मैं इस शिविर में सम्मिलित हुआ था । लेकिन यहाँ तो अद्भुत घटना घट गई । संदेह का वाष्पीकरण हो गया और श्रद्धा प्रस्फुटित हो गई । एक वैज्ञानिक मन श्रद्धा से नत हो गया । नियंत्रित दशा में प्रयोग दस दिन तक चलता रहा । अपनी सम्पूर्ण निष्ठा से सम्मिलित होने का भरपूर प्रयास किया । मौन भंग नहीं होने दिया । निर्देशों का अक्षरशः पालन करता रहा । प्रारंभ के दो तीन दिनों में तो बेचैनी रही, क्योंकि लगातार एक आसन में बैठने का अभ्यास नहीं था । लेकिन संकल्प की दृढ़ता के सामने इस प्रारम्भिक बेचैनी को झुकना ही पड़ा । तीन दिन तक आनापान साधना चली । चौथे दिन मिली विपश्यना । इसे प्रारंभ करते ही विकारों का विस्फोट हो गया । मेरी आंखें लाल होकर कीचड़ से भर गईं । थोड़ी घबराहट हुई । यह संयोग ही था कि अपने साथ जो कुछ दवाएँ ले गया था उसमें आँख की भी दवा थी । सहायक आचार्य से सम्पर्क किया । उन्होंने तो इसे विपश्यना का सक्रिय प्रभाव कहते हुए एक शुभ लक्षण बताया । फिर भी दवा प्रयोग की आज्ञा दे दी । दवा चुक गई लेकिन शिविर के अन्त तक विकार - प्रक्षालन चलता ही रहा । आँख कीचड़ से भर भर जाती और मैं रूमाल से पोंछ

लेता । लेकिन साधना प्रक्रिया म कभी कोई कमी नहीं आने दी । उल्टे इस दुःख का लाभ मिला । मुँह पर मौन की सील लगाए रखी । आँखों पर भी सील लग गई । अब प्रायः इन्हें बंद ही रखता । उतना ही खोलता, जिससे कुछ आने - जाने का कार्य चल जाय । दूसरों की ओर देखना रुक गया । इससे समूह में रहकर भी एकान्त साधने मे सहायता मिली । ज्यों ज्यों शिविर समापन की ओर ढलता गया मुझे एक नया अनुभव होने लगा-हलकेपन का, पुलकन का, आनंद के अनवरत उभार का । साधना में जाने के पूर्व पिछले दो वर्षों से जीवन की एक अति तनावपूर्ण स्थिति मे से गुजर रहा था । मानस खीज, कुढ़न, क्रोध और तनाव से भरा रहता था । यहाँ इस मानसिक प्रतिबल और तनाव के बादल बरस पड़े । मानस - प्रणाली का प्रक्षालन हो गया, एक ताजगी, पुलकन, निर्भारता अवतरित हुई मानस पटल पर । धीरे धीरे आँख में कीचड़ आना बन्द हो गया । शिविर के दो - तीन दिन बाद तो बिल्कुल ठीक हो गया स्वतः ।

एक दूसरा अपूर्व अनुभव हुआ । साधना के नवें दिन सायंकाल ६ से ७ बजे की सामूहिक साधना के लिए ज्यों ही जाकर अपने आसन पर बैठा, शिविर - प्रबंधक से एक सूचना मिली कि मैं अपना आसन लेकर सहायक आचार्य के सामने खाली स्थान पर बैठूं । उनका ऐसा आदेश हुआ था । तुरन्त मैने आदेश का पालन किया । वहाँ मेरे अतिरिक्त तीन साधक और बैठाए गए थे । स. आचार्य का शुभागमन हुआ । एक घंटे का अनुष्ठान प्रारंभ हुआ । सिर पर ध्यान एकाग्र करते ही मुझे मस्तिष्क के एक कोष से दूसरे कोष को जाते विद्युत् स्फुलिंग दीख पड़ने लगे । मस्तिष्क का एक प्रखंड ऐसा था जहाँ इस प्रकार की चमक का कोई आवागमन नहीं था । धीरे धीरे ध्यान समग्र शरीर पर फैल गया और भीतर प्रविष्ट हो गया । फिर तो पूरा शरीर प्रकाश पुंज में रूपान्तरित हो गया । उसका बोध बना रहा । अन्य कोई बोध न था । भौतिक घड़ी में एक घंटा व्यतीत होते ही "भवतु सब्ब मंगलं" की अनुगूंज हुई । इसके एक मंद कम्पन ने मस्तिष्क का स्पर्श किया और ध्यान टूटा । बाहर वर्षा हो रही हो, ऐसा मालूम होने लगा । अन्तस एक विचित्र आनंद और पुलकन से भरा था । यद्यपि भौतिक घड़ी के अनुसार एक घंटा बीता था लेकिन मुझे तो क्षण ही लग रहा था । स. आचार्य ने पूछा, " कहो कैसा रहा ? " " अद्भुत " के अतिरिक्त मैं कुछ कह नहीं पाया । फिर अपने पूर्वासन पर बैठने का आदेश हुआ ।

मार्ग वही है जो मंजिल तक पहुँचा दे । लगा मार्ग मिल गया । अब तो कह सकता हूँ कि यदि सही और सटीक मार्ग मिल जाय और अपनी पूरी समग्रता के साथ व्यक्ति मार्ग पर चल ही दे तो मंजिल की झलक मिल ही जाती है । फिर तो समग्र अस्तित्व सहायक बन जाता है और मंजिल की गुरुत्वाकर्षण शक्ति उसी प्रकार त्वरण उत्पन्न करती है जैसे किसी ऊँचाई से गिरी वस्तु को पृथ्वी अपनी ओर त्वरित करती रहती है । मुझे तो कुछ ऐसा ही अनुभव हो रहा है ।

अपने अंतिम प्रवचन में पूज्य गुरुजी ने प्रभावशाली सुन्दरता के साथ यह समझाया था कि नए पौधे को लगाने पर जब तक वह पुष्ट और बड़ा न हो जाय बाड़ लगाकर उसका संरक्षण और पोषण करना होता है । समझ मे बैठ गई है बात । लगातार साधना चल तो रही है लेकिन गृहस्थ जीवन ही ऐसा है कि व्यतिक्रम और व्यवधान ला ही देता है । साधना शिविरों में एक नियंत्रित परिवेश में काम करना होता है । परिवेश सहायक होता है । इस अनुभूति ने मुझे प्रेरित किया है कि अपने व्यस्त गृहस्थ जीवन से कम से कम एक शिविर के लिए तो प्रतिवर्ष समय निकाल ही लूं । इसी निर्णय के अनुसार इस वर्ष दूसरे शिविर में सम्मिलित हुआ ।

दूसरा शिविर पूज्य श्री लक्ष्मोनारायण राठी के ही निर्देशन मे १२ से २१ जुलाई तक वाराणसी में पूरा किया । एक वर्ष में जीवन की आपाधापी से जो शिथिलता आई थी वह पुनः साफ हुई और एक नवीन ताजगी भर आयी । विभिन्न आह्लादक अनुभव आते जाते रहे । शरीर के अणुओं के कम्पन का बोध हुआ । अब तक के अभ्यास ने मेरे जीवन में कुछ टिकाऊ प्रभाव उत्पन्न किया है ।

१) सजगता बढ़ी है । राग, द्वेष और मोह के क्षणों में विरलता आई है । लगता है समग्र अस्तित्व इसमें सहायता कर रहा है । अब किसी के प्रति द्वेषभाव रख पाना कठिन हो रहा है । क्रोध के स्थान पर करुणा का भाव आने लगा है । जीवन के प्रति अपने भ्रमित दृष्टिकोणों को पहचानने लगा हूँ । उनकी आवेगशील जकड़न में ढील आ गई है । वस्तुनिष्ठता की प्रवृत्ति पुष्ट हुई है ।

ऐसा नहीं कि राग, द्वेष और मोह की प्रवृत्तियाँ नहीं उठतीं । सांस्कारवश वृत्तियाँ तो आ जा ही रही हैं, लेकिन आन्तरिक सजगता के कारण उनकी पहचान हो जाती है, जिससे वे निष्प्रभावी हो जाती हैं या उनका सदुपयोग हो जाता है ।

२) समता सधी है । जीवन के उतार - चढ़ाव में संतुलन कम बिगड़ने लगा है । बिगड़ता भी है तो यथाशीघ्र समता आ जाती है । गुरुजी का निम्नांकित दोहा गुरुमंत्र की तरह सहायता के लिए स्मृति में आ जाता है —

कभी बाग पतझड़ रहे, कभी बसन्त बहार ।
पर समता में स्थित रहे, संत निहार निहार ॥

३) दिन रात अन्तस में एक ताजगी, शांति, प्रमुदन और प्रीति बनी रहती है । मानसिक थकान का तो अभाव हो गया है ।

४) मैत्रीभाव की प्रगाढ़ता के कारण जीवन में जैसी भी स्थिति आवे उसके स्वागत और स्वीकृति की सामर्थ्य में वृद्धि हुई है । सर्व स्वीकार का भाव सघन हो रहा है । " लैट् कम् इवाट् मे " दुःख में भी भलाई का तत्व दीखने लगा है ।

मैत्रीभाव की प्रगाढ़ता का दूसरा प्रभाव यह पड़ा है कि स्वतः अपने वेतन का एक लघु अंश याचकों, अभावग्रस्त लोगों और सामाजिक कार्यों में दान के रूप में देने लगा हूँ ।

५) काया के तल पर भी प्रभाव अवतरित हुआ है । शारीरिक स्वास्थ्य पहले की अपेक्षा ठीक चल रहा है । साक्षीभाव की सम्पुष्टि से कष्टों की दुःखद तीक्ष्णता में कुन्दता आई है ।

६) वास्तविक श्रद्धा का जन्म हुआ है जो आगे बढ़ने के लिए आवश्यक है ।

७) बुद्ध - उपदेश संबंधी साहित्य में रुचि बढ़ी है। अध्ययन में लग गया हूँ। विचित्र है, अनायास पुस्तकें मिलती जा रही हैं। खरीदने के नाम पर तो अभी दो ही पुस्तकें खरीदी हैं-- गुरुजी की "आत्म दर्शन" और राठीजी की "दुःखमुक्ति की साधना"।

'धम्मपद' का निम्नांकित सूत्र दिशा-निर्देशन के लिए चुना है :

कुम्भूपमं कायमिमं विदित्वा, नगरूपमं चित्तमिदं ठपेत्वा।
योधेथ मारं पञ्ञावुधेन, जितं च रक्खे अनिवेसनो सिया॥

इस शरीर को घड़े के समान अनित्य जान। चित्त को नगर के समान दृढ़ ठहरा। प्रज्ञा रूपी हथियार से मार से युद्ध कर। अनासक्त भाव से जीत के लाभ की रक्षा कर।

विपश्यना साधना से प्रज्ञा का दीप जलाए रखने का सतत प्रयास करते रहने की अभीप्सा है। कल्याणमित्र पू. श्री सत्यनारायणजी गोयन्का और पू. लक्ष्मीनारायणजी राठी का बहुत कृतज्ञ हूँ। इनकी अनुकम्पा से विपश्यना का रत्न मिला है। आशा और विश्वास है इनकी अनुकम्पा का प्रोत्साहन मिलता रहेगा।

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मा सम्बुद्धस्स! भवतु सब्ब मंगलं!

— रीडर एवं अध्यक्ष, मनोविज्ञान विभाग,
स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर (उ. प्र.)

❀

साधकों के उद्‌गार

बम्बई के श्री विट्ठल दादा पाटिल जो कि पिछले तीन वर्षों से नियमित साधना कर रहे हैं और अनेक शिविरों में भाग ले चुके हैं, लिखते हैं, "न जाने कितने रोगों से घिरा था। एसिडिटी के कारण बिल्कुल हल्का एवं बिना मिर्च मसाले का ही भोजन लेना अनिवार्य था। हाथ की हथेली में खुजली आती थी और फट गया था, पांव के तलवे इतने फटे थे कि चलना मुश्किल था। दवाइयाँ लेता रहा पर कोई सुधार नहीं हो पाया।

स्वभाव आध्यात्मिक होने से आध्यात्म की खोज में लगा रहा। पूजा, पाठ, जप आदि चल रहे थे पर मन शांति नहीं और न ही पीड़ाओं में कोई सुधार। गुरु-मंत्र का जाप किया, किसी इंटेंसिव मेडीटेशन का दो दिन का शिविर किया, गीता के पाठ किए, कुछ संत - महात्माओं के चरित्र पढ़े लेकिन कहीं साफ रास्ता नहीं मालूम पड़ता था। कुछ योगासनों के अभ्यास से कुछ लाभ जरूर हुआ।

किसी पूर्व पुण्य का उदय हुआ, मेरा भाग्य खुल गया। किसी मित्र के साथ विपश्यना के शिविर में चला आया। पहले ही शिविर में बहुत कुछ पाया। गुरुजी का हर शब्द गहरा असर करता रहा और आध्यात्म अनुभूति के स्तर पर उतरने लगा। कोरे बुद्धि-विलास से छुटकारा मिला। छठे दिन शाम की धर्मचर्चा में बताया गया कि किसी किसी को रात में नींद नहीं आयगी तो घबराना नहीं। अब यह साधना रात - दिन के अभ्यास की साधना हो गई। नींद नहीं आए तो संवेदना देखते देखते लेटे रहना और समता बनाए रखना। सुबह उठोगे तो बिल्कुल जैसे गहरी नींद से उठे हो। परन्तु चिंता कर ली तो बिल्कुल उल्टा हो जायगा। सचमुच नींद नही आई और संवेदना देखते हुए लेटे रहा। एसिडिटी के कारण पेट में जगह जगह दुःखाव सा रहा। पांव में बेहद जलन हुई जैसे आग पर रखा हो, पर यह सब समता से देखता रहा। दस दिन में शरीर में शिथिलता आई और बहुत हल्कापन महसूस हुआ। घर आया तो बहुत स्वस्थ महसूस कर रहा था। किसी दवा की जरूरत नही हुई। सुबह - शाम नियमित अभ्यास चालू हो गया। लोकल गाड़ी में यात्रा करते हुए भी सांस पर मन टिकने लगा।

जीवन धन्य हो गया। जीने की कला आ गई। जिसे खोज रहा था, वही मिल गया। अब तो हर छः महीने में एक बार दस दिन के लिए इगतपुरी चला ही जाता हूँ। डाक्टरों के पास जाने की जरूरत नहीं हुई। कभी थोड़ा अचार खाता हूँ तो डाक्टर की याद आती है जो कहते थे, 'तुम्हारे पेट की बीमारी के लिए बहुत हानिकारक है।' एसिडिटी, सोरासिस कहाँ भाग गए, पता ही नही। अब यह कहावत समझ में आने लगी कि 'For every physical problem there is a mental reason.' इहलोक सुधर गया तो विश्वास होता है कि परलोक भी सुधरेगा ही।

सब का मंगल हो!"

❀

हैदराबाद के श्री ए. के. भद्र लिखते हैं, "पांच शिविर लेने के बाद अब मैं पूर्णतया विपश्यना के मार्ग पर चलने के लिए दृढ़ हो पाया हूँ। पहले शिविर में ही मुझे बहुत लाभ मिला था। दूसरे, तीसरे, चौथे में कुछ न कुछ अधिक लाभ अवश्य मिला परन्तु विपश्यना का गहरा रहस्य समझ में न आने के कारण इसे पूर्णरूप से ग्रहण नहीं कर सका था। इसके पहले पातंजल योग साधना का अभ्यास कई वर्षों से कर रहा था और लाभान्वित भी हुआ था। वह भी शीघ्र फल देता है। लेकिन विपश्यना की जो विशेषता है, जिसे बार बार सुन कर भी ठीक से समझ नहीं पाया था अब आपकी सच्ची करुणा और कल्याण की भावना जो आप सब दिशाओं में प्रेषित करते हैं, उसी के प्रभाव और प्रेरणा से मैंने विपश्यना को सही रूप से ग्रहण किया और हृदय में स्थायी आसन दिया है।

जो कुछ भी मैं पहले करता था वह सब राग के आधार पर ही करता था। कुछ विशेष प्रकार का अनुभव पाने की इच्छा ही बलवती रहती थी। एक संघर्ष जैसा चलता रहता था सदैव मन में। जीत होती तो बहुत आनंद होता और हार होती तो उदासी में डूब जाता। इन दो धाराओं में ही जीवन - प्रवाह बहता रहता। अब आपकी अपार करुणा और प्रेम के फलस्वरूप यह अनमोल विद्या इतने सहज रूप से प्राप्त हो गई कि मन समता में रहना सीख गया। सोचने पर आंखों में पानी भर आता है। मेरा प्रणाम स्वीकार कीजिए गुरुदेव!"

❀

बम्बई के श्री एम. एम. खान्धार लिखते हैं, "...व्यक्तिगत रूप से मैं आप का अत्यंत कृतज्ञ हूँ। व्याकुल बनाने वाले विकार इतनी सरलता से दूर होंगे, यह अब भी समझ मे नहीं आता लेकिन मैल कटते जा रहा है और हम देखते जा रहे हैं। अब बाहरी प्रमाण की जरूरत नहीं। यह सत्य धर्म है।

हम इस परंपरा के आचार्यों के आभारी हैं जिनके कारण विपश्यना और आपके संपर्क में आए। किसी व्यक्ति में इतनी करुणा हो सकती है यह हमने आपसे ही महसूस किया कि बदले में कुछ नहीं पाकर भी आपने हम पर इतना बड़ा उपकार किया। हम इसका सही रूप से पालन कर भवचक्र से छूट सकते हैं।... जो लाभ अत्यंत कठिनाई से मिलना चाहिए वह इतना सहज सुलभ हो गया। आपका तथा सब का मंगल हो।"

❀

धम्मगिरि पर बच्चों का आनापान शिविर

(३/६ सुबह से ५/६ शाम तक)

इगतपुरी के कॉन्वेन्ट तथा महात्मा गांधी विद्यालयों के सातवीं कक्षा के बालक-बालिकाएं उक्त शिविर में शामिल होंगे। पुराने साधक जो घर पर नियमित अभ्यास करते हैं उनके ११/१२ वर्षीय बच्चे भी आवेदन कर सकते हैं। अच्छा हो उनके साथ परिवार का कोई पुराना साधक भी आवे।

शिक्षकों के लिए सेमिनार

विपश्यना विशोधन विन्यास द्वारा १४/५ सुबह से २५/५ तक धम्मगिरि पर शिक्षकों के लिए सेमिनार का आयोजन रखा गया है जिसका विषय है-- "विपश्यना साधना के माध्यम से बुद्धि, दायित्व वहन करने की शक्ति तथा नैतिक मूल्यों के विकास द्वारा छात्र/छात्राओं का उत्कर्ष।" इसमें लगभग २०० प्रसिद्ध शिक्षाविद् तथा विपश्यी साधक भाग लेंगे। उच्च विद्यालयों, महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों के शिक्षाशास्त्री प्रेक्षक के रूप में भाग लेंगे। पहले दिन परियत्ति (सैद्धान्तिक चर्चा) होकर दस दिन की पटिपत्ति (साधनाभ्यास) तथा अन्तिम दिवस भविष्य के लिए कार्य-योजना तैयार की जाकर सेमिनार का समापन होगा।

जो साधक इसमें भाग लेना चाहें वे कृपया अपना आवेदन पत्र शीघ्र भेजें। स्थानाभाव के कारण सबको स्वीकृति नहीं दी जा सकेगी।

❀

दूहा धरम रा

मंगलकारी धरम पथ, चाल मानवी चाल।
जो चाल्यो ई पंथ पर, बो ही हुयो निहाल॥

गुरु तो पंथ दिखाणियो, दीन्यो पंथ दिखाय।
मंजिल आपां पूगस्यां, चाल्यां अपणै पांव॥

तप रै तप रै मानखा, तप्यां ही निरमल होय।
सुवरण अगनी मँह तपै, तप तप कुंदन होय॥

सुख फैलै ई जगत मँह, दुखियो र' वै न कोय।
ना कोई दुरमन हुवै, ना कोइ व्याकुल होय॥

अवसर आयो धरम को, मत आलस मँह खोय।
फिर सुयोग सद् धरम को, कुण जाणै कद होय॥

सिर सूं पगथलियां तलक, कण कण चेतन होय।
हर हर गंगा धरम की, अणु अणु निरमल होय॥

दोहे धरम के

सदाचार ही धर्म है, दुराचार ही पाप।
पर सेवा ही धर्म है, पर पीड़ा ही पाप॥

मत दुर्जन का संग कर, दुर्जन दुखकर होय।
पुण्य कर्म क्षय क्षीण हो, पाप प्रवंचित होय॥

अंगारा जब धधकता, छुए जलाये अंग।
बझे तो तन कालिख लगे, दुखद दुष्ट का संग॥

जीत झूठ को सत्य से, क्रोध जीत अक्रोध।
जीत घृणा को प्यार से, मैल चित्त का शोध॥

हो एकाकी ध्यान कर, ध्यान ज्ञान की खान।
सब ध्यानों में श्रेष्ठ है, यह विपश्यना ध्यान॥

धर्म भूमि से फिर बहे, शुद्ध धर्म की धार।
एक बार होवे पुनः, सकल जगत उद्धार॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास
बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली-११० ००७
की मंगल कामनाओं सहित

विपश्यना विशोधन विन्यास के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक : रामप्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३. दूरभाष ८६
चैत्र पूर्णिमा ❀ मुद्रण स्थान : विपश्यना प्रेस, धम्मगिरि, इगतपुरी. दूरभाष : ७६, १७६ ❀ April 87

वार्षिक शुल्क रु. १०/-
आजीवन शुल्क रु. १००/-

'विपश्यना' रजि. नं. 19156/71
पोस्टल रजि. नं. NS(M) 16/87

Licence No. NS 18
to post without prepayment

प्रेषक :
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२ ४०३
(जि. नासिक, महाराष्ट्र, मध्य रेल्वे)